



अथ सप्तमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन्मदाश्रयः ।
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु ॥

श्रीभगवान् बोले—हे पार्थ! अनन्यप्रेमसे मुझमें
आसक्तचित्त तथा अनन्यभावसे मेरे परायण होकर
योगमें लगा हुआ तू जिस प्रकारसे सम्पूर्ण विभूति,
बल, ऐश्वर्यादि गुणोंसे युक्त, सबके आत्मरूप
मुझको संशयरहित जानेगा, उसको सुन ॥ १ ॥

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः ।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥

मैं तेरे लिये इस विज्ञानसहित तत्त्वज्ञानको सम्पूर्णतया कहूँगा, जिसको जानकर संसारमें फिर और कुछ भी जाननेयोग्य शेष नहीं रह जाता ॥ २ ॥

**मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥**

हजारों मनुष्योंमें कोई एक मेरी प्राप्तिके लिये यत्न करता है और उन यत्न करनेवाले योगियोंमें भी कोई एक मेरे परायण होकर मुझको तत्त्वसे अर्थात् यथार्थरूपसे जानता है ॥ ३ ॥

**भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।
अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥**

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार भी—इस प्रकार यह आठ प्रकारसे विभाजित मेरी प्रकृति है। यह आठ प्रकारके भेदोंवाली तो अपरा अर्थात् मेरी जड़ प्रकृति है और हे महाबाहो ! इससे दूसरीको, जिससे यह सम्पूर्ण जगत् धारण किया जाता है, मेरी जीवरूपा परा अर्थात् चेतन प्रकृति जान ॥ ४-५ ॥

**एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय ।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ॥**

हे अर्जुन! तू ऐसा समझ कि सम्पूर्ण भूत इन दोनों प्रकृतियोंसे ही उत्पन्न होनेवाले हैं और मैं सम्पूर्ण जगत्का प्रभव तथा प्रलय हूँ अर्थात् सम्पूर्ण जगत्का मूलकारण हूँ ॥ ६ ॥

**मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय ।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥**

हे धनञ्जय! मुझसे भिन्न दूसरा कोई भी परम कारण नहीं है। यह सम्पूर्ण जगत् सूत्रमें सूत्रके मनियोंके सदृश मुझमें गुँथा हुआ है ॥ ७ ॥

**रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः ।
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु ॥**

हे अर्जुन! मैं जलमें रस हूँ, चन्द्रमा और सूर्यमें प्रकाश हूँ, सम्पूर्ण वेदोंमें ओंकार हूँ, आकाशमें शब्द और पुरुषोंमें पुरुषत्व हूँ ॥ ८ ॥

**पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ ।
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु ॥**

मैं पृथ्वीमें पवित्र* गन्ध और अग्निमें तेज हूँ

* शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धसे इस प्रसङ्गमें इनके कारणरूप तन्मात्राओंका ग्रहण है, इस बातको स्पष्ट करनेके लिये उनके साथ पवित्र शब्द जोड़ा गया है।

तथा सम्पूर्ण भूतोंमें उनका जीवन हूँ और तपस्वियोंमें तप हूँ ॥ ९ ॥

**बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम् ।
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ॥**

हे अर्जुन! तू सम्पूर्ण भूतोंका सनातन बीज मुझको ही जान। मैं बुद्धिमानोंकी बुद्धि और तेजस्वियोंका तेज हूँ ॥ १० ॥

**बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम् ।
धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ॥**

हे भरतश्रेष्ठ! मैं बलवानोंका आसक्ति और कामनाओंसे रहित बल अर्थात् सामर्थ्य हूँ और सब भूतोंमें धर्मके अनुकूल अर्थात् शास्त्रके अनुकूल काम हूँ ॥ ११ ॥

**ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये ।
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि ॥**

और भी जो सत्त्वगुणसे उत्पन्न होनेवाले भाव हैं और जो रजोगुणसे तथा तमोगुणसे होनेवाले भाव हैं, उन सबको तू 'मुझसे ही होनेवाले हैं' ऐसा जान, परन्तु वास्तवमें* उनमें मैं और वे मुझमें नहीं हैं ॥ १२ ॥

* गीता अ० ९ श्लोक ४-५ में देखना चाहिये।

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत् ।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ॥

गुणोंके कार्यरूप सात्त्विक, राजस और तामस—
इन तीनों प्रकारके भावोंसे यह सारा संसार—
प्राणिसमुदाय मोहित हो रहा है, इसीलिये इन तीनों
गुणोंसे परे मुझ अविनाशीको नहीं जानता ॥ १३ ॥
दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥

क्योंकि यह अलौकिक अर्थात् अति अद्भुत
त्रिगुणमयी मेरी माया बड़ी दुस्तर है; परन्तु जो
पुरुष केवल मुझको ही निरन्तर भजते हैं, वे इस
मायाको उल्लंघन कर जाते हैं अर्थात् संसारसे तर
जाते हैं ॥ १४ ॥

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः ।
माययापहतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥

मायाके द्वारा जिनका ज्ञान हरा जा चुका है ऐसे
आसुर-स्वभावको धारण किये हुए, मनुष्योंमें नीच, दूषित
कर्म करनेवाले मूढलोग मुझको नहीं भजते ॥ १५ ॥

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥

हे भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन ! उत्तम कर्म करनेवाले

अर्थार्थी^१, आर्त^२, जिज्ञासु^३ और ज्ञानी—ऐसे चार प्रकारके भक्तजन मुझको भजते हैं ॥ १६ ॥

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते ।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः ॥

उनमें नित्य मुझमें एकीभावसे स्थित अनन्य प्रेमभक्तिवाला ज्ञानी भक्त अति उत्तम है, क्योंकि मुझको तत्त्वसे जाननेवाले ज्ञानीको मैं अत्यन्त प्रिय हूँ और वह ज्ञानी मुझे अत्यन्त प्रिय है ॥ १७ ॥

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम् ॥

ये सभी उदार हैं, परन्तु ज्ञानी तो साक्षात् मेरा स्वरूप ही है—ऐसा मेरा मत है; क्योंकि वह मद्गत मन-बुद्धिवाला ज्ञानी भक्त अति उत्तम गतिस्वरूप मुझमें ही अच्छी प्रकार स्थित है ॥ १८ ॥

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥

बहुत जन्मोंके अन्तके जन्ममें तत्त्वज्ञानको प्राप्त

१. सांसारिक पदार्थोंके लिये भजनेवाला ।

२. संकट-निवारणके लिये भजनेवाला ।

३. मेरेको यथार्थरूपसे जाननेकी इच्छासे भजनेवाला ।

पुरुष, सब कुछ वासुदेव ही है—इस प्रकार मुझको भजता है, वह महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है ॥ १९ ॥

**कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः ।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ॥**

उन-उन भोगोंकी कामनाद्वारा जिनका ज्ञान हरा जा चुका है, वे लोग अपने स्वभावसे प्रेरित होकर उस-उस नियमको धारण करके अन्य देवताओंको भजते हैं अर्थात् पूजते हैं ॥ २० ॥

**यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥**

जो-जो सकाम भक्त जिस-जिस देवताके स्वरूपको श्रद्धासे पूजना चाहता है, उस-उस भक्तकी श्रद्धाको मैं उसी देवताके प्रति स्थिर करता हूँ ॥ २१ ॥

**स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते ।
लभते च ततः कामान्मयैव विहितान्हि तान् ॥**

वह पुरुष उस श्रद्धासे युक्त होकर उस देवताका पूजन करता है और उस देवतासे मेरे द्वारा ही विधान किये हुए उन इच्छित भोगोंको निःसन्देह प्राप्त करता है ॥ २२ ॥

**अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम् ।
देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि ॥**

परन्तु उन अल्प बुद्धिवालोंका वह फल नाशवान् है तथा वे देवताओंको पूजनेवाले देवताओंको प्राप्त होते हैं और मेरे भक्त चाहे जैसे ही भजें, अन्तमें वे मुझको ही प्राप्त होते हैं ॥ २३ ॥

**अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः ।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम् ॥**

बुद्धिहीन पुरुष मेरे अनुत्तम अविनाशी परम भावको न जानते हुए मन-इन्द्रियोंसे परे मुझ सच्चिदानन्दघन परमात्माको मनुष्यकी भाँति जन्मकर व्यक्तिभावको प्राप्त हुआ मानते हैं ॥ २४ ॥

**नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ॥**

अपनी योगमायासे छिपा हुआ मैं सबके प्रत्यक्ष नहीं होता, इसलिये यह अज्ञानी जनसमुदाय मुझ जन्मरहित अविनाशी परमेश्वरको नहीं जानता अर्थात् मुझको जन्मने-मरनेवाला समझता है ॥ २५ ॥

**वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन ।
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन ॥**

हे अर्जुन! पूर्वमें व्यतीत हुए और वर्तमानमें स्थित तथा आगे होनेवाले सब भूतोंको मैं जानता हूँ, परन्तु

मुझको कोई भी श्रद्धा-भक्तिरहित पुरुष नहीं जानता ॥ २६ ॥

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत ।
सर्वभूतानि सम्मोहं सर्गे यान्ति परन्तप ॥

हे भरतवंशी अर्जुन! संसारमें इच्छा और द्वेषसे उत्पन्न सुख-दुःखादि द्वन्द्वरूप मोहसे सम्पूर्ण प्राणी अत्यन्त अज्ञताको प्राप्त हो रहे हैं ॥ २७ ॥

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः ॥

परन्तु निष्कामभावसे श्रेष्ठ कर्मोंका आचरण करनेवाले जिन पुरुषोंका पाप नष्ट हो गया है, वे राग-द्वेषजनित द्वन्द्वरूप मोहसे मुक्त दृढ़निश्चयी भक्त मुझको सब प्रकारसे भजते हैं ॥ २८ ॥

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये ।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम् ॥

जो मेरे शरण होकर जरा और मरणसे छूटनेके लिये यत्न करते हैं, वे पुरुष उस ब्रह्मको, सम्पूर्ण अध्यात्मको, सम्पूर्ण कर्मको जानते हैं ॥ २९ ॥

साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः ।
प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः ॥

जो पुरुष अधिभूत और अधिदैवके सहित तथा अधियज्ञके सहित (सबका आत्मरूप) मुझे अन्तकालमें

भी जानते हैं, वे युक्तचित्तवाले पुरुष मुझे जानते हैं
अर्थात् प्राप्त हो जाते हैं ॥ ३० ॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ज्ञानविज्ञानयोगो
नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

